Reg. No. : N-1316/2014-15
Journal No. : 48796
UGC Approved

ISSN 2394-2207
May-October 2017
Vol. III, No. II, Part-I
IIJ Impact Factor : 2.011

उन्मेष

Unmesh

An International Half Yearly
Refereed Research Journal
(Art and Humanities)

सम्पादकद्वय
डॉ० राधेश्याम मौर्य शिवेन्द्र कुमार मौर्य

प्रकाशक
जन सेवा एवं शोध शिक्षा संस्थान, प्रतापगढ़, उ०प्र०

Reg. No. : N-1316/2014-15
Journal No. : 48796
UGC Approved

IIJ Impact Factor : 2.011
ISSN : 2394-2207

उन्मेष
Unmesh

An International Half Yearly Refereed Research Journal (Art & Humanities)

Vol. : III No. II, Part-I May-October, 2017

सम्पादकद्वय
डॉ० राधेश्याम मौर्य
शिवेन्द्र कुमार मौर्य

सह-सम्पादक
डॉ० मनोहर लाल

प्रकाशक
जन सेवा एवं शोध शिक्षा संस्थान, प्रतापगढ़-२३०००१ (उ०प्र०)

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207
Vol. III, No. II, May-2017, October-2017

सामाजिक जड़ता को तोड़ता 'कबिरा खड़ा बाजार में'

डॉ0 निरंजन कुमार यादव*

हिन्दी नाटकों का पुनर्जागरण से बहुत गहरा संबंध रहा है। आकस्मिक नहीं है कि हिन्दी साहित्य में आधुनिक युग/ नवजागरण का आरम्भ नाटकों के द्वारा हुआ। कबीर भी भारतीय नवजागरण के अग्रदूत हैं। यदि आज कबीर आधुनिक लगते हैं, आधुनिक ही नहीं हमारे समकालीन भी प्रतीत होते हैं तो उसकी वजह उनकी कविता की सामाजिक भूमि और चिंतन की सामाजिक भूमिका है। यही वजह है कि गढ़ो और मठों को तोड़ने वाले तथा 'अभिव्यक्ति के खतरे उठाने' वाले गजानन माधव मुक्तिबोध को भी 'कबीर आधुनिक लगते हैं'।[1] ऐसे ऐतिहासिक चरित्र को केन्द्र में रखकर हिन्दी नाट्य लेखन परम्परा में नाटक न लिखा गया हो ऐसा कैसे हो सकता है? ऐतिहासिक चरित्र प्रधान नाटकों की श्रृंखला में देखा जाय तो भक्तिकाल के बेपरवाह, दृढ़ और उग्र–संक्षेप में मस्तमौला चरित्र के धनी कबीर को केन्द्र में रखकर कई नाटक लिखे गये हैं। आधुनिक रचनाशीलता में कविता के बाद 'कबीर की सबसे सशक्त और समृद्ध उपस्थिति हिन्दी नाटकों में मिलती है। भारतीय जनमानस में कबीर 'कवि' के रूप में जितने नहीं लोकप्रिय हैं, उससे कहीं ज्यादा एक ऐसे समाज–सुधारक के रूप में लोकप्रिय रहे हैं, जिन्होंने भक्तिकाल समाज में समाहित धार्मिक पाखण्ड, कुरीतियों, अंधविश्वासों एवं ऊँच–नीच, छुआछूत जैसी सामाजिक रूढ़ियों को दूर करने का भरसक प्रयास किया था। वह समाज में व्याप्त बुराइयों एवं रुढ़ियों के खिलाफ हाथ में लुकाटा लिए भरे बाजार में खड़े मिलते हैं तथा समाज में मानवीय मूल्यों से ऊपर धर्म को ठहराने वाले धर्म के ठेकेदारों को चुनौती देते रहते हैं। अपने युग की तानाशाही, धर्मान्धता, बाह्याचार और मिथ्या धारणाओं के विरूद्ध अथक संघर्ष करने वाले कबीर आज भी हमारे बीच एक स्थायी और प्रेरक मूल्य की तरह स्थापित हैं। इसी को केन्द्र में लेकर लिखा गया नाटक भीष्म साहनी का 'कबिरा खड़ा बाजार' में है। मनुष्य के पसंद ना पसंद से भी उसके विचारधारा को जाना समझा जा सकता है। भीष्म साहनी प्रगतिशील लेखक हैं इसका तय उनकी रचना के विषय वस्तु से भी किया जा सकता है। इस परिप्रेक्ष्य में भी उनके इस नाटक को देखा जा सकता है। अपने समकालीन कवियों में निश्चित रूप से कबीर सबसे अधिक प्रगतिशील है। हिन्दी साहित्य में कबीर की महत्ता जितनी अधिक प्रगतिशीलता के चलते स्थापित हुई उसके दशमांश भी अध्यात्म या हठयोग साधना के चलते नहीं। भीष्म साहनी भी अपने नाटक 'कबिरा खड़ा बाजार में' जिस कबीर का व्यक्तित्व गढ़ते हैं वह एक संघर्षरत युवा कबीर है। वह जन समस्याओं को दूर करने के लिए संघर्षरत कबीर है न कि संत अध्यात्मिक कबीर। उनका जन सरोकार से बहुत गहरा ताना–बाना है। बकौल भीष्म साहनी कबीर के बारे में मेरी परिकल्पना एक संघर्षरत युवा व्यक्ति की थी न कि संत कबीर का।[2] कबीर की फक्कड़ाना मस्ती, निर्मम अक्खड़ता और युग प्रवर्तक सोच इस कृति में पूरी जीवन्तता के साथ मौजूद है। साथ ही इसमें यह भी उजागर हुआ है कि कबीर की साहित्यिकता सामाजिक जड़ता को तोड़ने का ही एक माध्यम थी जिसके सहारे उन्होंने अनेक मोर्चो पर संघर्ष किया। इस नाटक के बारे में जोगिन्द्र कुमार संधु ने बड़ी सटीक टिप्पणी की है, यह नाटक मध्यकालीन परिवेश पर आधारित है। इसमें मध्ययुगीन संत और सामाजिक रुढ़ियों से टकराने वाले कबीर के दृढ़ संघर्षशील और प्रखर व्यक्तित्व की पुनर्रचना करते हुए व्यवस्था के अमानवीय दृष्टिकोण को उभारने का प्रयास किया गया है। इसमें यह भी बताया गया है कि कबीर की साहित्यिकता सामाजिक जड़ता को तोड़ने का ही एक माध्यम थी। जिसके सहारे उन्होंने अनेकानेक मोर्चों पर संघर्ष किया। कबीर की संघर्षशील भावना पाठकों की भावना से अनायास ही जुड़ जाती है।[3]

*असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी, राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, हमीरपुर

दीन–पैगम्बर का आता है तो कबीर से लोदी का मोह भंग शुरू हो जाता है। जिस फकीर से वह मिलने आया था, वह कथित संन्यास धारण किये हुये फकीरों से भिन्न था। यह कबीर दुनियादार भी है, फकीर भी है। कबीर के यह कहने पर, ''मैं इन्सान को हिन्दू और तुर्क की नजर से नहीं देखता। मैं केवल उसे इंसान की नजर से खुदा के बन्दे की नजर से देखता हूँ। .....जन्म से सभी इन्सान होते हैं, वरना ब्राह्मण का बेटा माँ के पेट से ही तिलक लगाकर और तुर्क का बेटा खतना करवाकर निकलता।''[9] इतना सुनते ही सिकन्दर लोदी तिलमिला उठता है। सही मौका देखकर चाटुकार शहर कोतवाल धीरे से आग में घी डालने के समान यह कहता है, ''यह आदमी दीन की तौहीन करता है। रोजा नमाज को बुरा–भला कहता है। यहाँ तक कि मस्जिद की सीढ़ियों पर खड़ा होकर उल्टी–सीधी बातें करता है। फिर सुल्तान का गुस्सा सातवें आसमान पर चढ़ जाता है और उसे लग जाता है कि यह आदमी कोई पीर फकीर नहीं बल्कि एक बदजुबान सरफिरा शायर काफिर और दुःसाहसी है। मजहब की बात करो तो कहता है कि मैंने मजहब को छोड़ दिया। इन सब के अलावा यह मुझे भी आँख दिखाता है। गुस्साया लोदी कबीर को धमकी देता है ''आज के बाद कभी मुझे शिकायत मिली कि तूने दीन की तौहीन की है तो मैं तेरी टांगे चीर दूँगा। (सहसा गुस्से से) इस आदमी को शहर से निकाल दो।[10] इस संजीदा माहौल में भी कबीर को थोड़ा भय नहीं है। वह निर्भय निर्गुण का गुण गाते हैं, 'मोको कहाँ ढूढ़े बन्दे, मैं तो तेरे पास में।'[11] इसी स्वभाव पर मुग्ध होकर हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कहा है हिन्दी साहित्य के हजार साल के इतिहास में कबीर जैसा महिमा–मंडित व्यक्तित्व कोई दूसरा पैदा नहीं हुआ। सामाजिक उत्पीड़न और धार्मिक वर्चस्ववाद के खिलाफ संघर्ष करने वाले कबीर के उस महिमाशाली एवं विराट व्यक्तित्व को आधार बनाकर लिखे गये इस नाटक में कबीर के महत्व को और महत्वपूर्ण बना दिया है। नाटक का अंत इस बिन्दु पर होता है कि कबीर का संघर्ष बराबर चलता रहेगा। यह भीष्म साहनी की प्रगतिवादी सोच की परिणति है क्योंकि उन्हें पता है कि बिना संघर्ष के कुछ भी हासिल नहीं होने वाला है।

इसी परम्परा में मणि मधुकर का नाटक 'इकतारे की आँख' नरेन्द्र मोहन की 'कहत कबीर सुनो भाई साधो', गोविन्द बल्लभ पंत का 'काशी का जुलाहा' और ज्ञान चतुर्वेदी का 'जो घर फूके आपना' का उल्लेख मिलता है। इन नाटकों में भी कबीर के व्यक्तित्व का सामाजिक पक्ष ही उभर कर सामने आता है। लेकिन ये नाटक उतने सफल नहीं हो सके जितना कि 'कबिरा खड़ा बाजार में। यह नाटक एम.के.रैना के निर्देशन में लगातार 10 वर्षों तक खेला जाता रहा है।[12]

इस प्रकार निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि भीष्म साहनी ने अपने इस नाटक में कबीर के समय की धर्मान्धता एवं अनाचार और तानाशाही के सामाजिक, धार्मिक एवं राजनीतिक संदर्भ और प्रगतिशील व्यक्तित्व को उभारा है। इनका यह नाटक जहाँ सामाजिक जीवन की सच्चाईयों को प्रभावपूर्ण ढंग से प्रस्तुत करता है वहीं चेतना का संस्कार भी प्रदान करता है, तभी तो भीष्म साहनी हिन्दी साहित्य में प्रगतिशील परम्परा के सशक्त हस्ताक्षर बने।

सन्दर्भ :

1. जैन, नेमिचन्द्र (सं.) 'मुक्तिबोध रचनावली खण्ड–5' (द्वितीय आवृत्ति : 2007), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ–288
2. परवीन, फरहत सं. आजकल अगस्त 2015, पृष्ठ सं.–26
3. संधू, डॉ0 जोगिन्द्र कुमार, 'भीष्म साहनी के उपन्यासों में त्रासदी, यथार्थ (संस्करण 2012), नवभारत प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ–109
4. साहनी, भीष्म, 'कबिरा खड़ा बाजार में' (संस्करण : 2010) राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ–9
5. वहीं, पृष्ठ–8
6. वहीं, पृष्ठ–28
7. वहीं, पृष्ठ–45
8. वहीं, पृष्ठ–122
9. वहीं, पृष्ठ–126
10. वहीं, पृष्ठ–127
11. वहीं, पृष्ठ–127
12. नगेन्द्र, सं. 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' (संस्करण :2009), मयूर पेपर बैक, नोयडा पृष्ठ–676

♦♦♦